वर्ष 6, अंक 66, अक्टूबर 2020

ISSN 2454-2725

Peer Reviewed Journal

Impact Factor: 1.888 [GIF]

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

जनकृति

अंक 66

अक्टूबर 2020

JANKRITI

Multidiciplinary International Monthly Magazine

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

Editor

Dr. Kumar Gaurav Mishra

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	Understanding the caste discrimination in Indian media: Dr. Dharmaraj Kumar	12-20
2.	औपनिवेशिक उत्तर भारत में प्रेस और पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास: मनीष कुमार सिंह	21-28
3.	ब्लैक थिएटर आंदोलन में प्रतिरोध: अस्मिता का सौदर्यशास्त्र: उपासना गौतम	29-34
4.	'बंबई में का बा' सदी की भीषण त्रासदी को बयां करता गीत: बृजेश प्रसाद	35-40
5.	चन्द्रकिरण सौनरेक्सा के बाल-नाटक: डॉ. मिथिलेश कुमारी	41-49
6.	21 वीं सदी की आदिवासी हिन्दी कविता में प्रकृति और पर्यावरण के सरोकार के प्रश्न: अनीश कुमार	50-57
7.	कोल समुदाय का ऐतिहासिक संघर्ष : आज और कल: कुमारी मंजू आर्य	58-64
8.	बच्चों की परवरिश के संदर्भ में मानसिक विकास और मानसिक स्वास्थ्य: कमलावती कुमारी	65-69
9.	भारत की भाषिक जातीयता और हिन्दी: डॉ. गोपाल कुमार	70-78
10.	गांधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी: शिलाची कुमारी	79-83
11.	वैश्वीकरण के दौर में हिंदी : विस्तार एवं संभावनाएं: नीरज तिवारी	84-89
12.	MARGINALISATION OF INDIGENOUS SCHOOLS IN COLONIAL DELHI, 1910-1947: Akanshi Vidyarthi	90-103
13.	Tracing the Gandhi's Concept of Education andIts Effect on India's New Education Policy 2020: Shubham Kumar Pati	104-113
14.	वैश्विक महामारी कोविड-19 के कारण प्रभावित स्कूली शिक्षा और प्रभाव न्यूनता के उपाय: प्रदीप सिंह	114-117
15.	हिंदी कहानियों में स्त्री समलैंगिकता का स्वरुप: जैनेन्द्र कुमार	118-123
16.	विभाजन और नारी: आशा	124-128
17.	पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भूमिका: पूजा यादव	129-135
18.	भारत में महिला सशक्तिकरण: डॉ. शालिनी	136-140
19.	मुस्लिम की भारतीय अस्मिता और रज़ा की रचना दृष्टि: डॉ. सुनील कुमार यादव	141-145
20.	मुंशी ज़का उल्लाह, डिप्टी नज़ीर अहमद व सर सयेद अहमद के मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा पर विचार व कार्य: अब्दुल अहद	146-155
21.	अपने रचना संसार में आज भी जीवित हैं- 'सुषम बेदी': नेहा गौड़	156-160
22.	प्लैजरिज्म तथा प्लैजरिज्म सॉफ्टवेयर का प्रयोग: डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा	161-166
23.	पाठक की संकल्पना और उसकी भूमिका: पंकज शर्मा	167-174
24.	हिन्दी कथा आलोचना का आरंभिक स्वरूप: डॉ.संदीप कुमार रंजन	175-182

Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 66, October 2020

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 66, अक्टूबर 2020

21वीं सदी की आदिवासी हिन्दी कविता में प्रकृति और पर्यावरण के सरोकार के प्रश्न

अनीश कुमार
पी-एच.डी. शोध छात्र, हिन्दी विभाग
सांची बौद्ध भारतीय- ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
बारला अकादमिक परिसर, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत
ईमेल - anishaditya52@gmail.com
मोबाईल नंबर – 09198955188

शोध सारांश

आदिवासी हिन्दी कविता में अपनी संस्कृति, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति गहरा लगाव व्यक्त किया गया है। इनकी कविताओं में आई प्रकृति परम्परागत प्रकृति चित्रण से भिन्न यह आदिवासी जीवन और संस्कृति का मूलाधार है। गौरतलब है कि आदिवासी प्रारम्भ से ही प्रकृति प्रेमी रहे हैं। यह प्रकृति प्रेम इनकी कविताओं में सरल, सहज रूप में दिखाई पड़ता है। जंगल की कटाई के फलस्वरूप उनके प्रकृतिक भोजन नष्ट हो गए, जिससे उनके जीवन पर ही संकट आ गया। वे प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द विचरण कर रहे थे किन्तु सभ्य समाज ने उनसे उनका सुखी जीवन बड़ी बेरहमी से छीनने का प्रयास कर रही है। अब सवाल यह खड़े हो रहे हैं कि क्या प्रकृति के बिना उनकी कल्पना की जा सकती है? प्रकृति के साथ बेरहम छेड़खानी आदिवासियों के अस्तित्व का संकट ही नहीं है बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए खतरा है। पर्यावरणप्रेमियों के साथ आदिवासी कविता भी सुर मिलाती है। प्रकृति और मनुष्य का संबंध पुराना है। पर्यावरण और जीवन की अभिन्नता से सभी परिचित हैं। पर्यावरण की स्वच्छता, निर्मलता और संतुलन से ही संसार को बचाया जा सकता है। कोई भी आदिवासी कविता प्रकृति के बिना संभव नहीं है। मानव समुदाय प्रतिदिन पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति लापरवाह होता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में घातक परिणाम हो सकते हैं। पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होकर अगर ध्यान नहीं दिया गया तो जनजीवन के लिए परिणाम घ-ातक हो सकते हैं। आदिवासियों ने तो सपने में भी यह नहीं सोचा कि भविष्य में उनके साथ ऐसा होगा जिससे वे जंगलों से बेदखल कर दिये जाएंगे। वे तो स्वच्छन्द प्रकृति की गोद में रहे हैं। इसी स्वच्छन्दता के रहते अभावों भरी जिन्दगी की भी उन्होंने परवाह नहीं की। समृद्ध प्राकृतिक परिवेश में सीमित आवश्यकताओं के साथ एक लम्बी सांस्कृतिक परंपरा रही है। जीवन का आधार रही यह प्राकृतिक संपदा सांस्कृतिक धरोहर उनसे छीनी जा रही है। आदिवासियों को बेदखल करना ही पर्यावरण से छेड़छाड़ है। इस शोध पत्र में आदिवासी कविताओं के हवाले से पर्यावरण व उसके स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द :*पर्यावरण, आदिवासी कविता,21वीं सदी , आदिवासी संस्कृति, आदिवासी समाज।*

आमुख

आदिवासी संस्कृति पर्यावरणीय संस्कृति है। आदिवासी हमेशा से ही प्रकृति की गोद में निवासरत हैं। मूल आदिवासी संस्कृति सहअस्तित्व की संस्कृति है। प्रकृति के बिना आदिवासी अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते। आदिवासियों ने प्रकृति को न तो छेड़ा है और न ही उसका दोहन किया। उसके हर व्यवहार व संस्कार में प्रकृति का संरक्षण व पोषण की भावना

निहित है। "आदिवासी समुदाय अपने स्थानीय पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके उसी के अनुकूलित जीवनयापन करते हैं, ये पर्यावरण जैसे घटकों व प्राकृतिक संसाधनों के साथ छेड़छाड़ नही करते हैं। इसके विस्थापन से पर्यावरण के हित में सोचना असंगत है।"[1] आदिवासी आदिम काल से जंगलों और बीहड़ों में रहते आए हैं। इन्होंने प्रकृति के अनुकूल अपना जीवन यापन करना सीखा है। प्रकृति को छेड़कर प्रकृति के प्रतिकूल जीवन शैली इनके लिए संभव नही है। लेकिन आज यही आदिवासी क्षेत्र और उसकी प्राकृतिक सम्पदा सरकार, औद्योगिक घराना, दलालों, भूमाफियाओं, कारपोरेट सेक्टर आदि के लिए लूट की चीज बनकर रह गई है। यही कारण है कि आज आदिवासी व आदिवासी कविता प्रकृति, प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए प्रहरी की भांति लड़ रहा है। हरिराम मीणा ने लिखा है कि "प्रकृति के साथ बेरहम छेड़खानी केवल आदिवासी के अस्तित्व का संकट नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता व मानवेत्तर प्राणी जगत के लिए खतरा है। पर्यावरण प्रेमियों के साथ आदिवासी कविता भी सुर मिलाती है।"[2]

आदिवासी कभी भी प्रकृति से खुद को अलग नहीं समझता। इसीलिए तो युवा आदिवासी कवयित्री डॉ - हीरा मीणा तो स्पष्ट लिखती हैं .

खेतों में लहराती हुई फसलों का अंदाज हूँ, मैं !!
मैदानों में बहसती शांत नदियों का राज हूँ, मैं !!"[3]

वंदना टेटे प्रकृति से दूर होने की पीड़ा हो बखूबी समझती हैं। प्रकृति के नष्ट होने की पीड़ा भी समझती हैं। उन्हें अपनी अगली पीढ़ी की भी उतनी ही चिंता है जितनी की अपनी। आदिवासियों के यहाँ लगभग सभी पर्व प्रकृति के नजदीक ही होते हैं। प्रकृति से कटने का मतलब है कि आदिवासी परंपरा से कट जाना। आदिवासियों के यहाँ मनाया जाने वाला सरहुल का पर्व प्रकृति से नज़दीकियाँ बढ़ाता है। यह पीड़ा उनकी कविता में उभरकर आती है।

सरहुल पर्व से जंगल के फल-फूल को तोड़नोड़ने खाने की मनाही करमा के बाद खेतों में खड़ी भेलवा की टहनियों का राज आह ! नहीं जन पाएंगे मेरे बच्चे"[4]

प्रकृति के माध्यम से जीवन दर्शन और जीवन को उत्साहित करने का प्रयास भी कविताओं में देखने को मिलता है। आज के समय में मनुष्य के अंदर एक निराशा की भावना उत्पन्न होती जा रही है। वहीं आदिवासी का जुड़ाव प्रकृति से होने के कारण वह कभी निराश नहीं होता है। किन्तु जंगलों पर बढ़ता विकास का साम्राज्य धीरेधीरे उसे ही खत्म किए दे रहा है-। चारों तरफ कंक्रीट की सड़के व आलीशान महल होने के बावजूद लोग गर्मियों से हतोत्साहित होकर पहाड़ों नदियों के शरण में ही छुट्टियाँ मनाने जाते हैं। इतनी संकट के बावजूद कवयित्री आशा करना बंद नहीं करती है। आशा इसलिए भी है कि आदिवासी प्रकृति के मर्म को समझते हैं। प्रकृति मनुष्य के साथ खिलवाड़ तब तक नहीं करती जब तक कि मनुष्य उससे छेड़छाड़ न करे।

[1] सम्पादक डॉरमेशचन्द मीणा ., डॉशर्मा .पी.ओ ., लेखपर्यावरण को - बचाने के लिए संघर्षरत आदिवासी 7-8 दिसंबर 2011 को राजकीय महाविद्यालय, बूंदी में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी, पृष्ठ संख्या 119

[2] समकालीन आदिवासी कविता, सं .हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 10

[3] डॉहीरा मीणा ., लोक की पुकार, पंकज बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 35

[4] वंदना टेटे, कोनजोगा, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, झारखंड, पृष्ठ संख्या 12

इसलिए कवयित्री उदास न होने का सलाह देती है। वरिष्ठ कवयित्री वंदना टेटे लिखती हैं -

हरिया आएगा
बारिश होगी
बीज अंकुरित, बढ़ेगा, युवा होगा
फूलेगा, फलेगा, पकेगा
जमीन पर गिरेगा
और बारिश होगी
तब फिर अंकुरेगा
यही तो जीवन का मर्म है (प्रक्रिया)
इसलिए उदास मत हो
आओ काम को
खत्म कर लें
मत उदास हो।"[5]

वस्तुत आज विकास और औद्योगिकीकरण के बहाने चन्द लोग की स्वार्थ लिप्सा व पूंजीवादी सोच के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। विकास और औद्योगिकीकरण के नाम पर आवश्यकता से अधिक़ जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है। बड़ेबड़े पूँजीपति-, दलाल व ठेकेदार फल फूल रहे हैं। इसमें जंगल व कृषि योग्य भूमि भी शामिल है। इन सभी को आदिवासी कविता अपना विषयवस्तु बनाती है।

साहित्यिक दृष्टि से यदि आदिवासी कविता के स्वर का मूल्यांकन किया जाए तो हम पाते हैं कि आपके आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं। कौन साथ है और कौन बाहरी है इसका अंदाजा होने लगा है। विकास के मूल अवधारणा को समझने लगे हैं। निर्मला पुतुल विकास के नाम पर जंगलों को नष्ट करने वालों को चेतावनी देते हुए स्पष्ट कहती हैं कि हमें तुम्हारा एहसान नहीं चाहिए। ऐसा एहसान जिससे जंगल ही नष्ट हो जाये नहीं चाहिए। प्रकृति बची रहेगी तो मानव भी बचेगा। निर्मला पुतुल अपनी कविता 'तुम्हारे अहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' में आदिवासियों की इसी सोच को अभिव्यक्ति देते हुए कहती हैं -

अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कलकारखाने बनाना है-।
तालाबों को भापकर राजमार्ग,
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियां बसानी हैं,
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।"[6]

पुरस्कार से सम्मानित युवा साहित्य अकादमी आदिवासी कवि अनुज लुगुन की एक मशहूर कविता है'अघोषित उलगुलान' इस कविता में अनुज आज के आदिवासियों को जीने के अधिकार हांसिल करने के लिए किन समस्याओं से होकर गुजरना पड़ रहा है, इसका चित्र खींचते हुए चलते हैं कि कंक्रीट के जंगलों से प्रकृति के जंगलों को बचाने के लिए ज़हर बुझे तीरों से उन्हें किस प्रकार युद्ध करना पड़ रहा है -

लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उलगुलान में

[5] वंदना टेटे, कोनजोगा, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, झारखंड, पृष्ठ संख्या 20

[6] निर्मला पुतुल, बेघर सपने, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ संख्या 40

कट रहे हैं वृक्ष
माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीटों के जंगल,
दांडू जाए तो कहाँ जाए
कटते जंगल में
या बढ़ते जंगल में।"[7]

आदिवासी समाज जल, जंगल और जमीन पर आधारित आदिम समाज है, जिसकी जड़ें उसकी पुरातनता तथा परम्पराओं में निहित हैं, परन्तु विकास के दुष्चक्र तथा खनिज सम्पदाओं के अन्धाधुंध दोहन के परिणामस्वरूप उसके समक्ष अस्तित्व का संकठ उठ खड़ा हुआ है और इनमें से कुछ ने हथियार उठा लिए हैं। यदि सन्तुलित विकास तथा आदिवासियों के पर्यावास में सामंजस्य स्थापित किया जाए तो कोई कारण नहीं कि यह समुदाय भी देश की प्रगति में अन्य लोगों की भांति कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य न करे। पर्यावरण विनाश से पृथ्वी को बचाने के लिए आदिवासी महिलाएं भी कमतर नहीं है। कवि कहता है कि ये औरतें जितनी उलगुलान के समय ताकतवार थी उतनी ही आज भी हैं। इन्हें सिर्फ देह के आधार पर ही परिभाषित न किया जाये।

उलगुलान की औरतें
धरती से प्यार करने वालों के लिए
उतनी ही खूबसूरत
और उतनी ही खतरनाक
धरती के दुश्मनों के लिए।"[8]

पर्यावरण या प्रकृति को केवल वे ही लोग बचा सकते हैं जिनकी संस्कृति में प्रकृति को बचाने की कूट कर भरी हो-चिंता कूट। लेकिन, विडंबना यह है कि जिस आदिवासी समुदाय की संस्कृति और परंपरा में पर्यावरण को बचाने की चिंता निहित है, वह स्वयं अपने अस्तित्व और अस्मिता के संकट से जूझ रहा है। सामाजिक मान्यताओं और संस्कारों से ही आदिवासी जीवनशैली और प्रकृति के बीच प्रेममूलक और सहजीविता का संबंध रहा है जबकि सभ्य कही जाने वाली तथाकथित विकसित संस्कृतियों के साथ प्रकृति का संबंध संघर्षमूलक ही रहा है और इस वर्चस्व की जंग में प्रकृति निरंतर लहूलुहान होती जा रही है। वर्तमान समय जल, जंगल की किसी को कोई चिंता नहीं है। अनुज लुगुन लिखते हैं –

कोई नहीं बोलता इनके हालात पर
कोई नहीं बोलता जंगलों के कटने पर
पहाड़ों के टूटने पर
नदियों के सूखने पर।"[9]

आदिवासी जीवन प्रकृति से साहचर्य का जीवन है। आदिवासी साहित्य रचाव व बचाव का साहित्य है। आदिवासी समुदाय सहअस्तित्व के दर्शन को स्वीकार करता है। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में प्रकृति का उत्सव नहीं मनाती। प्राकृतिक दृश्यों के सुकोमल बिम्ब यहाँ नहीं हैं। उनके यहाँ जंगलों की अवैध कटाई जल के स्रोत सूखते जाने की गहरी चिंता है। जलज़मीन उनके अस्तित्व-जंगल-, उनकी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं। कवयित्री को पेड़ों की चित्कार

[7] https://hindisamay.com/content/5515/1/कविता-अघोषित%20उलगुलान-अनुज%20लुगुन-कविता.cspx

[8] https://hindisamay.com/content/5518/1/अनुजलुगुनकविताएँउलगुलानकीऔरतें.cspx

[9] https://hindisamay.com/content/5515/1/कविता-अघोषित%20उलगुलान-अनुज%20लुगुन-कविता.cspx

सुनाई दे रही है। वह विकास के ठेकेदारों से सवाल पूंछती है कि आपको क्यों नहीं सुनाई देता। पेड़ों का दर्द ये उन्हें क्यों नहीं सुनाई दे रहा है। अलसाई सी प्रकृति का सुंदर नायिका का वर्णन नहीं है बल्कि प्रकृति के नष्ट होते स्वरूप की चिंता है, पहाड़ो की चिंता है। लहूलुहान होने की इस पीड़ा और दर्द को मुख्य धारा के समाज से सवाल करती हैं। 'बूढ़ी पृथ्वी का दुख' शीर्षक कविता में इसे अभिव्यक्त करती हुई कवयित्री निर्मला पुतुल लिखती है कि -

क्या तुमने कभी सुना है
सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
पेड़ों की चीत्कार?
सुना है कभी
रात के सन्नाटे में अँधेरे से मुँह ढाँप
किस कदर रोती हैं नदियाँ?
कभी महसूस किया कि किस कदर दहलता है
मौन समाधि लिये बैठा पहाड़ का सीना
विस्फोट से टूटकर जब छिटकता दूर तक कोई पत्थर?
अगर नहीं, तो क्षमा करना!
मुझे तुम्हारे आदमी होने पर सन्देह है!!"[10]

स्त्री चिंतन व आदिवासी विमर्श पर गंभीर लेखन करने वाली संपादक, समाज सुधारक और लेखिका रमणिका गुप्ता स्त्री अस्मिता को पर्यावरण के माध्यम से समझने की मुहिम पर बल देती हैं -

ओ देवदार तुम्हारे पत्ते
जब भर देते हैं अँधेरे में गंध
सरसराने लगती है ध्वनि तो
सुर में सुर मिलाकर
सारा का सारा जंगल लगता है गाने
दूरदूर तक पसर जाता है राह का सन्नाटा-
डरने लगता है मन
क्या तुम्हें याद आता है
सदियों से पहले का दुर्दम दमन?"[11]

आज इस बात में किसी को कोई संदेह नहीं लोभ के -रह गया है कि ग्लोबल पूंजीवाद के लाभ चलते दुनिया में गरीबी और पर्यावरण का संकटबढ़ता जा रहा है। अपनी लालच के सिवा उसके सामने आदमी और प्रकृति की चिंता का कोई मायने नहीं रह गया है। विकास की पूंजीवादी अवधारणा या रास्ता विनाश का रास्ता बन गया है। वह जीवन और प्रकृति के विनाश का स्रोत बन गया है। आदिवासी कवियों में पर्यावरण की सुरक्षा, जल, जंगल, जमीन को बचाने का उनका संकल्प देखते ही बनता है। उनकी कलम अब चेता रही है उन्हें जो उनका शोषण कर रहे हैं। वरिष्ठ कवयित्री ग्रेस कुजूर प्रकृति के साथ छेड़छाड़ को गैरजरुरी बताती हुई उसके दुष्परिणाम से अवगत करातीं हैं -

यह प्रकृति
एक दिन मांगेगी
अपनी तरुणाई का एकएक क्षण-
और करेगी भयंकर बगावत।"[12]

धीरे इनको ख़त्म करने या इन प्राकृतिक -धीरे संसाधनों पर अधिकार करने के षड्यंत्र इन्हें इनकी ज़मीन से बेदखल कर रहे हैं। सीधेसादे आदिवासी भले -

[10] पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते शब्द, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या 31-32

[11] संप्रमोद रंजन ., फारवर्ड प्रेस पत्रिका, नई दिल्ली, मई 2015, पृष्ठ संख्या 62

[12] रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 21

ही इस षड्यंत्र को न पहचान पायें। निर्मला की कविताएँ इसकी पोल ज़रूर खोलती हैं। वे सवाल करती हैं कि जो धरती खनिजों की सम्पदा से इतनी संपन्न है उसके बाशिंदे गरीबी के अंधेरों में लिप्त क्यों हैं ? सामान्यतः जिसकी ज़मीन होती है उसकी संपत्ति पर भी उसी का अधिकार होता है तो फिर आदिवासी ही अपनी सम्पदा से बेदखल कैसे कर दिए गए। वास्तविकता का यह बोध उन्हें और चौकन्ना कर देता है। वे सावधान भी हैं, सजग भी और सक्रिय भी। इसीलिए वे समाज और प्रकृति को अभिन्न जैविक इकाई की तरह बचाने का आह्वान करती हैं -

जंगल की ताज़ा हवा
नदियों की निर्मलता
पहाड़ो का मौन
गीतों की धुन
मिट्टी का सौंधापन
फसलों की लहलहाट
आओ, मिलकर बचाएं "[13]

आदिवासियों की अपनी जंगल की हवा तभी बची रह सकती है जब पेड़ों का काटना रोका जा सके। उन पेड़ों के नाम तभी सुरक्षित रह सकते हैं यानि गायब होने से बच सकते हैं जब ये पेड़ पृथ्वी पर जिंदा रहेंगे। नदियों की निर्मलता और पहाड़ों का मौन यानि पहाड़ों की संस्कृति तभी बची रह सकती है जब वहाँ औद्योगिकीकरण न हो। आदिवासियों के गीतों की धुन तभी बच सकती जब सभ्य कहलाने वाले भी इन गीतों को गुनगुनाने की पहल करें जिसमें आदिवासी संस्कृति विद्यमान है।विकास के नाम पर" जंगल और भूमि की लूट के साथ प्रकृतिक संसाधनों के अवैज्ञानिक दोहन ने इस धरती की हरियाला मिटा दी। आदिवासी समुदाय जो सदियों से वंचित, शोषित और विकल्पहीन रहे हैं, उनकी हालत बहुत ही बदतर और चिंताजनक है।"[14]

हरिराम मीणा ने पर्यावरण को नष्ट करने वाले सभ्य समाज कोस्पष्ट शब्दों में चेतावनी देते हैं। उसके खिलाफ आदिवासियों को सचेत करते हुए लिखते हैं –

देखो तुम्हारे पेड़ गिर रहे हैं !
समुद्र मैला हो रहा है
तटों पर प्लास्टिक की थैलियाँ बिखर रहीं हैं
मछलियाँ दूर चली गईं
अक्टोपस छुप गए
सीशैल टूट गए-।
और तुम चुप हो ?"[15]

आदिवासियों ने भविष्य की ऐसी कल्पना तक न की थी। मनुष्य प्रकृति से खिलवाड़ करके अगली पीढ़ी के ऊपर खतरा डाल रहा है। वे हमेशा स्वच्छन्द प्रकृति की गोद में रहे हैं। इसी स्वच्छन्दता के रहते अभावों भरी जिन्दगी की भी उन्होंने परवाह नहीं की। समृद्ध प्राकृतिक परिवेश में सीमित आवश्यकताओं के साथ एक लम्बी सांस्कृतिक परंपरा रही है। जीवन का आधार रही यह प्राकृतिक संपदा सांस्कृतिक धरोहर उनसे छीनी जा रही है। आदिवासी कवि कविताओं के माध्यम से गुहार लगा रहा है कि आप नदी झरनों को भी

[13] निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 77

[14] संपंकज बिष्ट ., समयान्तर, जुलाई 2014, शरद कुमार यादव :लेख - आदिवासियों की कीमत पर विकास, पृष्ठ संख्या 27

[15] रोया नहीं था यक्ष, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 45

आदमी की तरह समझे अन्यथा मेरी कविताओं का पढ़ने का कोई औचित्य न होगा।

पहाड़ों, पेड़पौधों-, जंगल को भी
नदी झरनों को भी-
आदमी समझे, पहले आप
फिर कवितायें पढ़ें मेरी आप।"[16]

प्रकृति महज मनोरंजन का साधन नहीं है। इसे अपने जैसा समझने का गुहार लगा रहा है। कवि आगे कहता है कि

अगर आप पहाड़ों को, एक कोण से
एक विशेष दृष्टिकोण से
देखने के हैं अभ्यस्त
वहाँ के पेड़ों, लताओं, फूल-पौधों, औषधियों, वनस्पतियों
नदियों, झरनों, पशु-पक्षियों, तितलियों किट पतंगों को
मानते हैं जंगल
वहाँ के लोगों को, अभयारण्य का पशु
उन्हें देखने कि अपनी स्थिति में
कर नहीं सकते कोई परिवर्तन
मेहरबानी कर मेरी कवितायें न पढे तब आप।"[17]

आदिवासी कविता का स्वर मूलतः प्रतिरोधी है। जल, जमीन और जंगल से जुड़ी संवेदना समकालीन आदिवासी कविता का केंद्र स्वर है। चूंकि उनका जीवन धरती से ज़्यादातर जुड़ी हुई है। उनकी बड़ी आबादी जंगलों में ही बसी है। प्रकृतिक धरोहरों को बचाने की खातिर आदिवासी कविता पर्यावरण विमर्श को भी अपने में समाहित करती है। विकास बनाम विनाश ही यहाँ कायम है। आदिवासी प्राचीन काल से ही प्रकृति से प्रेम करते आये हैं। आदिवासी प्रकृतिपूजक हैं तथा जंगल जीवन के आधार हैं। इसलिए जंगलों के कटने पर, पहाड़ों के टूटने पर, नदियों के सूखने पर आदिवासी 'अघोषित उलगुलान' की चुनौती देता है। पूँजीवादी वर्चस्व और औद्योगिक विकास ने आदिवासियों के जल संसाधनों को अपने अधिकार में ले लिया है जिससे कि आदिवासियों के समक्ष जल संकट खड़ा हो गया है।

निष्कर्ष :

वास्तव में समाज और देश-दुनिया में उठापटक को कवि आज महसूस कर रहा है और भोग रहा है उसे कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है। उसके प्रति बेचैन रहता है। आखिर कौन नहीं चाहता कि पेड़ों की ठंडी छाया के नीचे उसका घर हो, पार्क में सुंदर पुष्प खिले हों। इन सभी स्मृतियों को कवि सँजो कर रख रहा है। लेकिन प्रकृति से छेड़छाड़ का असर सभी पर पड़ता है। भारत में सन् के बाद से आदिवासी इलाकों 1960 के खेतिहर किसानों के ज़मीनों का अधिग्रहण करने की शुरुआत हुई। यही से जल, जंगल और जमीन की सुरक्षा का प्रश्न सामने आया। आदिवासियों ने कभी किसी से कुछ नहीं मांगा। बल्कि मुख्य धारा का समाज समाज उनके पास गया और उनका शोषण किया। आदिवासियों ने जंगल की सुरक्षा करके शुद्ध हवा आदि तमाम चीजें बचाई। हमेशा प्रकृति को बचाने की गुहार करता रहा। है।

[16] महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 67

[17] महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 66

संदर्भ सूची

आधार ग्रंथ

1. डॉहीरा मीणा ., लोक की पुकार, पंकज बुक्स, दिल्ली
2. वंदना टेटे, कोनजोगा, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, झारखंड
3. निर्मला पुतुल, बेघर सपने, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
4. पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते शब्द, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ
5. रोया नहीं था यक्ष, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली

सहायक पुस्तक

1. समकालीन आदिवासी कविता, सं .हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर
2. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

पत्रिका

1. सम्पादक डॉरमेशचन्द मीणा ., डॉशर्मा .पी.ओ ., लेखपर्यावरण को बचाने के लिए संघर्षरत आदिवासी - 7-8 दिसंबर 2011 को राजकीय महाविद्यालय, बूंदी में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी
2. संप्रमोद रंजन ., फारवर्ड प्रेस पत्रिका, नई दिल्ली, मई 2015
3. सं. पंकज बिष्ट, समयान्तर, जुलाई 2014, शरद कुमार यादव :लेख आदिवासियों की कीमत पर विकास -

वेब

1. https://hindisamay.com/content/5515/1/कविता%अघोषित-20उलगुलान%अनुज-20लुगुन-.कविताcspx
2. https://hindisamay.com/content/5518/1/अनुजलुगुनकविताएँउलगुलानकीऔरतें.cspx

https://hindisamay.com/content/5515/1/कविता%अघोषित-20उलगुलान%अनुज-20लुगुन.कविता-cspx